ऐतरेयोपनिषदि
विशिष्टाद्वैतपरकम्
श्रीराघवकृपाभाष्यम्
(संस्कृत-हिन्दी भाष्य सहितम्)
भाष्यकाराः – जगद्गुरुरामानन्दाचार्याः
स्वामिरामभद्राचार्यमहाराजाः चित्रकूटीयाः

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।
।। श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।।

ऐतरेयोपनिषदि
(विशिष्टाद्वैतपरकम्)

श्रीराघवकृपाभाष्यम्
(संस्कृत-हिन्दी भाष्य सहितम्)

भाष्यकाराः-
जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्याः
स्वामिरामभद्राचार्यजीमहाराजाः
चित्रकूटीयाः

प्रकाशक :
श्रीतुलसीपीठसेवान्यासः
तुलसीपीठः, आमोदवनम्
श्रीचित्रकूटधाम, जनपदं-सतना (म० प्र०)

प्रकाशक :

श्रीतुलसीपीठसेवान्यासः

तुलसीपीठः, आमोदवनम्,

श्रीचित्रकूटधाम, जनपदं–सतना (म० प्र०)

दूरभाष : ०७६७०–६५४७८

✪

प्रथमसंस्करणम् : ११०० प्रतयः

✪

✪

मूल्यम् : १०.०० रुपया

✪

प्राप्तिस्थानम् :

तुलसीपीठः, आमोदवनम्, चित्रकूटं जनपदं–सतना (म० प्र०)

वसिष्ठायनम्, (रानीगली) जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग, भोपतवाला, हरिद्वार (उ० प्र०)

श्रीगीताज्ञानमन्दिर, भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात) पिन– ३६०००२

✪

मुद्रक :

राघव ऑफसेट

बैजनत्था, वाराणसी– १०

फोन : ३२००३९

।। श्रीराघवो विजयतेतराम् ।।

प्रकाशकीयम्

नीलनीरदसंकाशकान्तये श्रितशान्तये ।
रामाय पूर्णकामाय जानकीजानये नमः ।।

साम्प्रतिकबुद्धिजीविवर्गे पण्डितसमाजे च श्रीवैष्णवसत्समाजे को नाम नाभिनन्दति ? पदवाक्यप्रमाणपारावारीणकवितार्किकचूडामणिसारस्वत-सार्वभौमपण्डितप्रकाण्डपरमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीवैष्णवकुलतिलकत्रिदण्डीश्वर-श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यवाचस्पतिमहामहनीयस्वामिरामभद्राचार्य-महाराजराजिष्णुप्रतिभाधनम् । आचार्यचरणैः श्रीसम्प्रदायश्रीरामानन्दीय-श्रीवैष्णवानुमोदितविशिष्टाद्वैतवादाम्नायमनुसृत्य ईशावास्यादि बृहदारण्यकान्तानामेका-दशोपनिषदां श्रीराघवकृपाभाष्यं प्रणीय भारतीयसंस्कृतवाङ्मयसनातनधर्मावलम्बिनां कियान् महान् उपकारो व्यधायीति तु निर्णेष्यतीतिहासः सोल्लासः । अस्य ग्रन्थरत्नस्य प्रकाशनदायित्वं श्रीतुलसीपीठसेवान्यासाय प्रदाय ऋणिनः कृता वयं श्रीमज्जगद्गुरुभिः वयं तेषां सततमाधमर्ण्यभाजः । अहं धन्यवादं दित्सामि साधुवादं च, वाराणसीस्थाय राघव ऑफसेट मुद्रणालयाध्यक्षाय चन्दनेशाय श्रीविपिनशंकरपाण्ड्यामहाभागाय, येन महता परिश्रमेण निष्ठया च गुरुगौरवेण जनताजनार्दनकरकमलं समुपस्थापितं ग्रन्थरत्नमेतत् । अहमाभारं बिभर्मि सकल-शास्त्रनिष्णातानां पण्डितप्रवराणां मुद्रणदोषनिराकरणचञ्चुनां जगद्गुरुवात्सल्यभाजनानां परमकुशलकर्मणां पं० प्रवर श्रीशिवरामशर्मणाम् पं० कृपासिन्धुशर्मणाम् च ।

अन्ततः साग्रहं निवेदयामि सर्वान् विद्वत्प्रवरान्, यत्—

ग्रन्थरत्नमिदं मत्वा सीताभर्तुरनुग्रहम् ।
निराग्रहाः समर्चन्तु रामभद्रार्यभारतीम् ।।

इति निवेदयते
राघवीया
कु० गीता देवी
प्रबन्धन्यासी, श्रीतुलसीपीठसेवान्यासस्य

श्रीराघवाष्टकम्

निशल्या कौसल्या सुखसुरलतातान्तिहृतये ।
यशोवारां राशेरुदयमभिकाङ्क्षन्निव शशी ।
समञ्चन् भूभागं प्रथयितुमरागं पदरतिम् ।
तमालश्यामो मे मनसि शिशुरामो विजयते ।।१।।

क्वचित् क्रीडन् व्रीडाविनतविहगैर्वृन्दविरुदो ।
विराजन् राजीवैरिव परिवृतस्तिग्मकिरणः ।
रजोवृन्दं वृन्दाविमलदलमालामलमलम् ।
स्वलङ्कुर्वन् बालः स इह रघुचन्द्रो विजयते ।।२।।

क्वचिन् माद्यन् माद्यन् मधुनवमिलिन्दार्यचरणा- ।
म्बुजद्वन्द्वो द्वन्द्वापनयविधिवैदग्ध्यविदितः ।
समाकुञ्चत् केशैरिव शिशुघनैः संवृतमिव ।
विधुं वक्त्रं विभ्रन् नरपतितनूजो विजयते ।।३।।

क्वचित् खेलन् खेलन् मृदुमरुदमन्दाञ्चलचल- ।
च्छिरः पुष्पैः पुञ्जैर्विवुधललनानामभिचितः ।
चिदान्दो नन्दन् नवनलिननेत्रो मृदुहसन् ।
लसन् धूलीपुञ्जैर्जगति शिशुरेको विजयते ।।४।।

क्वचिन् मातुः क्रोडे चिकुरनिकरैरंजितमुखः ।
सुखासीनो मीनोपमदृशिलसत्कज्जलकलः ।
कलातीतो मन्दस्मितविजितराकापतिरुचिः ।
पिबन् स्तन्यं रामो जगति शिशुहंसो विजयते ।।५।।

क्वचिद् बालो लालालसितललिताम्भोजवदनो ।
वहन् वासः पीतं विशदनवनीतौदनकणान् ।

विलुण्ठन् भूभागे रजसि विरजा सम्भृत इव ।
तृषा ताम्यत्कामो भवभयविरामो विजयते ।।६।।

क्वचिद् राज्ञो हर्षं प्रगुणयितुकामः कलगिरा ।
निसिञ्चन् पीयूषं श्रवणपुटके सम्मतसताम् ।
विरिंगन् पणिभ्यां वनरुहपदाभ्यां कलदृशा ।
निरत्यन् नैरारश्यं नवशशिकरास्यो विजयते ।।७।।

क्वचिन् नृत्यन् छायाछ्पितभवभीतिर्भवभवो ।
दधानोऽलंकारं विगलितविकारं शिशुवरः ।
पुराराते: पूज्यः पुरुषतिलकः कन्दकमनः ।
अयोध्यासौभाग्यं गुणितमिहरामो विजयते ।।८।।

जयत्यसौ नीलघनावदातो ।
विभा विभातो जनपारिजातः ।
शोभा समुद्रो नरलोकचन्द्रः ।
श्रीरामचन्द्रो रघुचारुचन्द्रः ।।९।।

ईशावास्यसमारब्धाः बृहदारण्यकान्तिमाः ।
ऐकादशोपनिषदो विशदाः श्रुतिसम्मताः ।।१०।।

श्रीराघवकृपाभाष्यनाम्ना भक्तिसुगन्धिना ।
पुण्यपुष्पोत्करेणेड्याः मया भक्त्या प्रपूजिताः ।।११।।

क्वचित्क्वचित् पदच्छेदः क्वचिदन्वययोजना ।
क्वचिच्छास्त्रार्थपद्धत्या पदार्थाः विशदीकृताः ।।१२।।

खण्डनं परपक्षाणां विशिष्टाद्वैतमण्डनम् ।
चन्दनं वैष्णवसतां श्रीरामानन्दनन्दनम् ।।१३।।

श्रीराघवकृपाभाष्यं भूषितं सुरभाषया ।
भाषितं भव्यया भक्त्या वेदतात्पर्यभूषया ।।१४।।

प्रमाणानि पुराणानां स्मृतीनामागमस्य च ।
तथा श्रीमानसस्यापि दर्शितानि स्वपुष्टये ।।१५।।

प्रत्यक्षमनुमानं च शाब्दञ्चेति यथास्थलम् ।
प्रमाणत्रितायं ह्यत्र तत्वत्रयविनिर्णयम् ।।१६।।

विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तदर्पणं श्रुतितर्पणम् ।
अर्पणं रामभद्रस्य रामभद्रसमर्पणम् ।।१७।।

यदि स्युः त्रुटयः काश्चित्ताः ममैवाल्पमेधसः ।
यदत्र किञ्चिद्वैशिष्ट्यं तच्छ्रीरामकृपाफलम् ।।१८।।

रुद्रसंख्योपनिषदां मया भक्त्या प्रभाषितम् ।
श्रीराघवकृपाभाष्यं शीलयन्तु विमत्सराः ।।१९।।

इति मंगलमाशास्ते
श्रीवैष्णवविद्वत्प्रीतिवशंवदो राघवीयो जगद्गुरु रामानन्दाचार्यो स्वमिरामभद्राचार्यः
अधिचित्रकूटम् ।

•

।। श्रीराघवो विजयतेतराम् ।।

उपोद्घात

नमो नीलाब्जनीलाय लीलामण्डितवेधसे ।
जानकीवदनाम्भोज प्रोल्लसल्लोचनालये ।।

महर्षि ऐतरेय को इस उपनिषद् का साक्षात्कार हुआ और यह ऐतरेय शाखा में पढ़ी गयी है यह साक्षात् सम्बन्ध से चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म का निर्वचन करती है। इसमें ब्रह्म से ही जगत् की सृष्टि का प्रतिपादन है तथा ब्रह्म को जगत् का स्रष्टा स्वीकारा गया है। जब परमेश्वर ने कीट-पतंग, पशु-पक्षी आदि चौरासी लाख योनियों के अन्तर्गत जीव शरीरों का निर्माण किया परन्तु वे सन्तुष्ट नहीं हुए जब परमात्मा ने ब्रह्मावबोध से समर्थ पुरुष का निर्माण किया, तब सभी ने उस रचना को स्वीकृत कहा। देवता परोक्ष प्रिय होते हैं। सबसे पहले पुरुष ने अर्थात् मानव शरीर युक्त जीवात्मा ने परमात्मा का साक्षात्कार किया और उसने कहा ''इदं अद्राक्षम्'' अर्थात् मैंने परमात्मा को देख लिया। इसीलिए श्रुति ने पहले, इदन्द्र कहा, फिर इन्द्र कहकर सम्बोधित किया। इस उपनिषद् का भी आशय स्पष्ट करने के लिए मैंने हिन्दी एवं संस्कृत में श्रीराघवकृपाभाष्य की रचना की। मुझे विश्वास है कि ऐतरेयोपनिषद् पर मेरे द्वारा हिन्दी तथा संस्कृत में प्रणीत श्रीराघवकृपाभाष्य श्रीवैष्णव एवं सारस्वत महानुभावों को वेदान्त सिद्धान्त समझाने में बहुत कृत कार्य होगा।

।। इति मंगलमाशास्ते जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य चित्रकूट ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

●

वाचस्पति, श्री तुलसी पीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज
तुलसीपीठ, आमोदवन, चित्रकूट, जि. सतना (म.प्र.)

पदवाक्यप्रमाणपारावारीण, विद्यावारिधि, वाचस्पति परमहंस परिव्राजिकाचार्य, आशुकवि यतिवर्य प्रसथानत्रयी भाष्यकार धर्मचक्रवर्ती अनन्तश्री समलंकृत

श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

पूज्यपाद

श्री श्री स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज

का

संक्षिप्त जीवन वृत्त

आविर्भाव

आपका अविर्भाव १४ जनवरी १९५० तदनुसार मकर संक्राति की परम पावन सान्ध्य बेला में वसिष्ठ गोत्रीय उच्च धार्मिक सरयूपारीण ब्राह्मण मिश्र वंश में उत्तर-प्रदेश के जौनपुर जनपद के पवित्र ग्राम शाडीखुर्द की पावन धरती पर हुआ। सर्वत्र आत्मदर्शन करने वाले हरिभक्त, या मानवता की सेवा करने वाले दानवीर, या अपनी मातृभूमि की रक्षा में प्राण बलिदान करने वाले शूर-वीर योद्धा, देशभक्त, को जन्म का सौभाग्य तो प्रभुकृपा से किसी भी माँ को मिल जाता है। परन्तु भक्त, दाता और निर्भीक तीनों गुणों की संपदा से युक्त बालक को जन्म देने का परम श्रेय अति विशिष्ठ भगवत् कृपा से किसी विरली माँ को ही प्राप्त होता है। अति सुन्दर एवं दिव्य बालस्वरूप आचार्य-चरण को जन्म देने का परम सौभाग्य धर्मशीला माता श्रीमती शची देवी और पिताश्री का गौरव पं० श्रीराजदेव मिश्रजी को प्राप्त हुआ।

आपने शैशव अवस्था में ही अपने रूप, लावण्य एवं मार्धुय से सभी परिवार एवं परिजनों को मोहित कर दिया। आप की बाल क्रीड़ाएँ अद्भुत थी। आपके श्वेतकमल समान सुन्दर मुख मण्डल पर बिखरी मधुर मुस्कान, हर देखने वाले को सौम्यता का प्रसाद बाँटती थी। आपका विस्तृत एवं तेजस्वी ललाट, आपके अपार शस्त्रीय ज्ञानी तथा त्रिकालदर्शी होने का पूर्व संकेत देता था। आपका प्रथम दर्शन मन को शीतलता प्रदान करता था। आपके कमल समान नयन उन्मुक्त हास्यपूर्ण मधुर चितवन चंचल बाल क्रीड़ाओं की चर्चा शीघ्र ही किसी महापुरुष के प्राकट्य की शुभ सूचना की भान्ति दूर-दूर तक फैल गई, और यह धारणा बन गई कि

यह बालक असाधारण है। 'होनहार विरवान के होत चीकने पात' की कहावत को आपने चरितार्थ किया।

भगवत् इच्छा

अपने प्रिय भक्त को सांसारिक प्रपञ्चों से दूर रखने के लिए विधाता ने आचार्य वर के लिए कोई और ही रचना कर रखी थी। जन्म के दो महीने बाद ही नवजात शिशु की कोमल आँखों को रोहुआ रोग रूपी राहू ने तिरोहित कर दिया। आचार्य प्रवर के चर्मनेत्र बन्द हो गए। यह हृदय विदारक दुर्घटना प्रियजनों को अभिशाप लगी, परन्तु नवजात बालक के लिए यह वरदान सिद्ध हुई। अब तो इस नन्हे शिशु के मन-दर्पण पर परमात्मा के अतिरिक्त जगत् के किसी भी अन्य प्रपञ्च के प्रतिबिम्बित होने का कोई अवसर ही नहीं था। आपको दिव्य प्रज्ञा-चक्षु प्राप्त हो गए। आचार्य प्रवर ने भगवत् प्रदत्त अपनी इस अन्तर्मुखता का भरपूर उचित उपयोग किया। अब तो दिन-रात परमात्मा ही आपके चिन्तन, मनन और ध्यान का विषय बन गए।

आरम्भिक शिक्षा

अन्तर्मुखता के परिणामस्वरूप आपमें दिव्य मेधाशक्ति और अद्भुत स्मृति का उदय हुआ, जिसके फलस्वरूप कठिन से कठिन श्लोक, कवित्त, छन्द, सवैया आदि आपको एक बार सुनकर सहज कण्ठस्थ हो जाते थे। मात्र पांच वर्ष की आयु में आचार्यश्री ने सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता तथा मात्र आठ वर्ष की शैशव अवस्था में पूज्य पितामह श्रीयुत् सूर्यबली मिश्र जी के प्रयासों से गोस्वामी तुलसीदास जी रचित सम्पूर्ण रामचरितमानस क्रमबद्ध पंक्ति, संख्या सहित कण्ठस्थ कर ली थी। आपके पूज्य पितामह आपको खेत की मेड़ पर बिठाकर आपको एक-एक बार में श्रीमानस के पचास पचास दोहों की आवृत्ति करा देते थे। हे महामनीषी, आप उन सम्पूर्ण पचास दोहों को उसी प्रकार पंक्ति क्रम संख्या सहित कण्ठस्थ कर लेते थे। अब आप अधिकृत रूप से श्रीरामचरितमानससरोवर के राजहंस बन कर श्रीसीता-राम के नाम, रूप, गुण, लीला, धाम और ध्यान में तन्मय हो गए।

उपनयन एवं दीक्षा

आपका पूर्वाश्रम का नाम 'गिरिधर-मिश्र' था। इसलिए गिरिधर जैसा साहस, भावुकता, क्रान्तिकारी स्वभाव, रसिकता एवं भविष्य निश्चय की

दृढ़ता तथा निःसर्ग सिद्ध काव्य प्रतिभा इनके स्वभाविक गुण बन गये। बचपन में ही बालक गिरिधर लाल ने छोटी-छोटी कविताएँ करनी प्रारम्भ कर दी थीं। २४ जून १९६१ को निर्जला एकादशी के दिन 'अष्टवर्ष ब्राह्मणमुपनयीत' इस श्रुति-वचन के अनुसार आचार्यश्री का वैदिक परम्परापूर्वक उपनयन संस्कार सम्पन्न किया गया तथा उसी दिन गायत्री दीक्षा के साथ ही तत्कालीन मूर्धन्य विद्वान् सकलशास्त्र-मर्मज्ञ पं० श्रीईश्वरदास जी महाराज जो अवध-जानकीघाट के प्रवर्तक श्री श्री १०८ श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज के परम कृपापात्र थे, इन्हें राम मन्त्र की दीक्षा भी दे दी।

उच्च अध्ययन

आपमें श्रीरामचरितमानस एवं गीताजी के कण्ठस्थीकरण के पश्चात् संस्कृत में उच्च अध्ययन की तीव्र लालसा जागृत हुई और स्थानीय आदर्श श्री गौरीशंकर संस्कृत महाविद्यालय में पाँच वर्ष पर्यन्त पाणिनीय व्याकरण की शिक्षा सम्पन्न करके आप विशेष अध्ययन हेतु वाराणसी आ गये। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की १९७३ शास्त्री परीक्षा में विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर एक स्वर्ण पदक प्राप्त किया एवं १९७६ की आचार्य की परीक्षा में समस्त विश्वविद्यालय में छात्रों में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर पाँच स्वर्ण पदक तथा एक रजत पदक प्राप्त किया। वाक्पटुता एवं शास्त्रीय प्रतिभा के धनी होने के कारण आचार्यश्री ने अखिल भारतीय संस्कृत अधिवेशन में सांख्य, न्याय, व्याकरण, श्लोकान्त्याक्षरी तथा समस्यापूर्ति में पाँच पुरस्कार प्राप्त किये, एवं उत्तर प्रदेश को १९७४ की 'चलवैजयन्ती' प्रथम पुरस्कार दिलवाया। १९७५ में अखिल भारतीय संस्कृत वाद-विवाद प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त कर तत्कालीन राज्यपाल डॉ० एम० चेन्ना रेड्डी से कुलाधिपति 'स्वर्ण पदक' प्राप्त किया। **इसी प्रकार आचार्यचरणों ने शास्त्रार्थों एवं भिन्न-भिन्न शैक्षणिक प्रतियोगिताओं में अनेक शील्ड, कप एवं महत्वपूर्ण शैक्षणिक पुरस्कार प्राप्त किये।** १९७६ वाराणसी साधुबेला संस्कृत महाविद्यालय में समायोजित शास्त्रार्थ आचार्यचरण प्रतिभा का एक रोमांचक परीक्षण सिद्ध हुआ। इसमें आचार्य अन्तिम वर्ष के छात्र, प्रत्युत्पन्न मूर्ति, शास्त्रार्थ-कुशल, श्री गिरिधर मिश्र ने 'अधातु परिष्कार' पर पचास विद्यार्थियों एवं अध्यापकों को अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञा एवं शास्त्रीय युक्तियों से अभिभूत करके निरुत्तर करते हुए सिंहगर्जनपूर्वक तत्कालीन विद्वान् मूर्धन्यों को परास्त किया था। पूज्य आचार्यश्री ने सं०वि०वि० के व्याकरण विभागाध्यक्ष

पं० श्री रामप्रसाद त्रिपाठी जी से भाष्यान्त व्याकरण की गहनतम शिक्षा प्राप्त की एवं उन्हीं की सन्निद्धि में बैठकर न्याय, वेदान्त, सांख्य आदि शास्त्रों में भी प्रतिभा ज्ञान प्राप्त कर लिया एवं 'अध्यात्मरामायणे अपणिनीयप्रयोगाणां विमर्शः' विषय पर अनुसन्धान करके १९८१ में विद्यावारीधि (Ph.D) की उपाधि प्राप्त की। **अनन्तर ''अष्टाध्याय्याः प्रतिसूत्रं शाब्दबोध समीक्षा'' इस विषय पर दो हजार पृष्ठों का दिव्य शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करके आचार्य चरणों ने शैक्षणिक जगत् की सर्वोत्कृष्ट अलंकरण उपाधि वाचस्पति'' (Dlit) प्राप्त की।**

विरक्त दीक्षा

मानस की माधुरी एवं भागवतादि सद्ग्रन्थों के अनुशीलन ने आचार्य-चरण को पूर्व से ही श्री सीतारामचरणानुरागी बना ही दिया था। अब १९ नवम्बर १९८३ की कार्तिक पूर्णिमा के परम-पावन दिवस को श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में विरक्त दीक्षा लेकर आचार्यश्री ने एक और स्वर्ण सौरभ-योग उपस्थित कर दिया। पूर्वाश्रम के डॉ० गिरिधर मिश्र अब श्रीरामभद्रदास नाम से समलंकृत हो गये।

जगद्गुरु उपाधि

आपने १९८७ में श्रीचित्रकूट धाम में श्रीतुलसीपीठ की स्थापना की। उसी समय वहाँ के सभी सन्त-महान्तों के द्वारा आपको श्रीतुलसीपीठाधीश्वर पद पर प्रतिष्ठित किया और ज्येष्ठ शुक्ल गंगा दशहरा के परम-पावन दिन वि० सम्वत् २०४५ तद्नुसार २४ जून १९८८ को वाराणसी में आचार्यश्री का काशी विद्वत् परिषद् एवं अन्य सन्तमहान्त विद्वानों द्वारा चित्रकूट श्रीतुलसीपीठ के जगद्गुरु रामानन्दाचार्य पर पर विधिवत अभिषेक किया गया एवं ३ फरवरी १९८९ को प्रयाग महाकुम्भ पर्व पर समागत सभी श्री रामानन्द सम्प्रदाय के तीनों अखाड़ों के श्रीमहन्तों चतुःसम्प्रदाय एवं सभी खालसों तथा सन्तों द्वारा चित्रकूट सर्वाम्नाय श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्य महाराज को सर्वसम्मति से समर्थनपूर्वक अभिनन्दित किया।

विलक्षणता

आपके व्यक्तित्व में अद्भुत विलक्षणता है। जिनमें कुछ उल्लेखनीय हैं कोई भी विषय आपको एक ही बार सुनकर कण्ठस्थ हो जाता है और वह कभी विस्मृत नहीं होता। इसी विशेषता के परिणामस्वरूप जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

जी ने समस्त तुलसी साहित्य अर्थात् तुलसीदास जी के बारहों ग्रन्थ, सम्पूर्ण रामचरितमानस, द्वादश उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, नारद-भक्तिसूत्र, भागवद्गीता, शाण्डिल्य सूत्र, बाल्मीकीयरामायण व समस्त आर्य ग्रन्थों के सभी उपयोगी प्रमुख अंश हस्तामलकवत् कण्ठस्थ कर लिये। आचार्यश्री हिन्दी एवं संस्कृत के आशुकवि होने के कारण समर्थ रचनाएँ भी करते हैं। वसिष्ठ गोत्र में जन्म लेने के कारण आचार्यवर्य श्रीराघवेन्द्र की वात्सल्य भाव से उपासना करते हैं। आज भी उनकी सेवा में शिशु रूप में श्री राघव अपने समस्त परिकर खिलौने के साथ विराजमान रहते हैं। आचार्यवर्य की मौलिक विशेषता यह है कि इतने बड़े पद को अलंकृत करते हुए भी आपका स्वभाव निरन्तर निरहंकार, सरल तथा मधुर है। विनय, करुणा, श्रीराम-प्रेम, सच्चरित्रता आदि अलौकिक गुण उनके सन्तत्त्व को ख्यापित करते हैं। कोई भी व्यक्ति एकबार ही उनके पास आकर उनका अपना बन जाता है। हे भारतीय संस्कृति के रक्षक! **आप अपनी विलक्षणकथा शैली से श्रोताओं को विभोर कर देते हैं।** माँ सरस्वती की आप पर असीम कृपा है। आप वेद-वेदान्त, उपनिषद्, दर्शन, काव्यशास्त्र व अन्य सभी धार्मिक ग्रन्थों पर जितना अधिकारपूर्ण प्रवचन करते हैं उतना ही दिव्य प्रवचन भगवान् श्रीकृष्ण की वाङ्मय मूर्ति महापुराण **श्रीमद्भागवत पर भी करते हैं।** आप सरलता एवं त्याग की दिव्य मूर्ति हैं। राष्ट्र के प्रति आपकी सत्यनिष्ठ स्पष्टवादिता एवं विचारों में निर्भीकता जन-जन के लिए प्रेरणादायक है। आपके दिव्य प्रवचनों में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की त्रिवेणी तो प्रवाहित होती है, साथ ही राष्ट्र का सागर भी उमड़ता है। जिसे आप अपनी सहज परन्तु सशक्त अभिव्यक्ति की गागर में भर कर अपने श्रद्धालु श्रोताओं को अवगाहन कराते रहते हैं।

आपका सामीप्य प्राप्त हो जाने के बाद जीव कृत्य-कृत्य हो जाता है। धन्य हैं वे माता-पिता जिन्होंने ऐसे 'पुत्ररत्न' को जन्म दिया। धन्य हैं वे सद्गुरु जिन्होंने ऐसा भागवत् रत्नाकर समाज की दिया। हे श्रेष्ठ सन्त शिरोमणि! हम सब भक्तगण आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर गौरवान्वित हैं।

साहित्य सृजन

आपने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से हिन्दी एवं संस्कृत के अनेक आयामों को महत्त्वपूर्ण साहित्यिक उपादान भेंट किये। काव्य, लेख, निबन्ध, प्रवचन संग्रह एवं दर्शन क्षेत्रों में आचार्यश्री की मौलिक रचनाएँ महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

इस प्रकार आचार्यश्री अपने व्यक्तित्व, कृतित्व से श्रीराम-प्रेम एवं सनातन धर्म के चतुर्दिक प्रचार व प्रसार के द्वारा सहस्राधिक दिग्भ्रान्त नर-नारियों को सनातन धर्मपीयूष से जीवनदान करते हुए अपनी यश:सुरभि से भारतीय इतिहास वाटिका को सौरभान्वित कर रहे हैं। तब कहना पड़ता है कि—

शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने।।

❀ ❀ ❀

संत सरल चित जगतहित, जानि सुभाउ सनेहु।
बाल विनय सुनि करि कृपा, रामचरन रति देहु।।

धर्माचार्य परम्परा :–

भाष्यकार !

प्राचीन काल में धर्माचार्यों की यह परम्परा रही है कि वही व्यक्ति किसी भी सम्प्रदाय के आचार्यपद पर प्रतिष्ठित किया जाता था, जो उपनिषद्, गीता तथा ब्रह्मसूत्र पर अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तानुसार वैदुष्यपूर्ण वैदिक भाष्य प्रस्तुत करता था। जिसे हम 'प्रस्थानत्रयी' भाष्य कहते हैं, जैसे शंकराचार्य आदि। आचार्यप्रवर ने इसी परम्परा का पालन करते हुए सर्वप्रथम नारदभक्तिसूत्र पर ''श्रीराघवकृपाभाष्यम्'' नामक भाष्य ग्रन्थ की रचना की। उसका लोकार्पण १७ मार्च १९९२ को तत्कालीन उप राष्ट्रपति डॉ० शंकरदयाल शर्मा द्वारा सम्पन्न हुआ।

पूज्य आचार्यचरण के द्वारा रचित **'अरुन्धती महाकाव्य' का समर्पण** समारोह दिनांक ७ जुलाई ९४ को भारत के राष्ट्रपति महामहिम डॉ० शंकरदयाल शर्मा जी के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

इसी प्रकार आचार्यचरणों ने एकादश उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा श्रीमद्भगवद्गीता पर रामानन्दीय श्रीवैष्णव सिद्धान्तानुसार भाष्य लेखन सम्पन्न करके विशिष्टाद्वैत अपनी श्रुतिसम्मत जगद्गुरुत्व को प्रमाणित करके इस शताब्दी का कीर्तिमान स्थापित किया है।

आप विदेशों में भी भारतीय संस्कृति का विश्वविश्रुत ध्वज फहराते हुए सजगता एवं जागरूकता से भारतीयधर्माचार्यों का कुशल प्रतिनिधित्व करते हैं।

आचार्यश्री के प्रकाशित ग्रन्थ

१. मुकुन्दस्मरणम् (संस्कृत स्तोत्र काव्य) भाग–१–२
२. भरत महिमा
३. मानस में तापस प्रसंग
४. परम बड़भागी जटायु
५. काका बिदुर (हिन्दी खण्ड काव्य)
६. माँ शबरी (हिन्दी खण्ड काव्य)
७. जानकी-कृपा कटाक्ष (संस्कृत स्तोत्र काव्य)
८. सुग्रीव की कुचाल और विभीषण की करतूत
९. अरुन्धती (हिन्दी महाकाव्य)
१०. राघव गीत-गुञ्जन (गीत काव्य)
११. भक्ति-गीता सुधा (गीत काव्य)
१२. श्री गीता तात्पर्य (दर्शन ग्रन्थ)
१३. तुलसी साहित्य में कृष्ण-कथा (समीक्षात्मक ग्रन्थ)
१४. सनातन धर्म विग्रह-स्वरूपा गौ माता
१५. मानस में सुमित्रा
१६. भक्ति गीत सुधा (गीत काव्य)
१७. श्रीनारदभक्तिसूत्रेषु राघवकृपाभाष्यम् (हिन्दी अनुवाद सहित)
१८. श्री हनुमान चालीसा (महावीरी व्याख्या)
१९. गंगामहिम्नस्तोत्रम् (संस्कृत)
२०. आजादचन्द्रशेखरचरितम् (खण्डकाव्य) संस्कृत
२१. प्रभु करि कृपा पाँवरि दीन्ही
२२. राघवाभ्युदयम् (संस्कृत नाटक)

आचार्यश्री के शीघ्र प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ

१. हनुमत्कौतुक (हिन्दी खण्ड काव्य)
२. संस्कृत शतकावली (क) आर्याशतकम् (ख) सीताशतकम्
(ग) राघवेन्द्रशतकम् (घ) मन्मथारिशतकम् (ङ) चण्डिशतकम्
(च) गणपतिशतकम् (छ) चित्रकूटशतकम् (ज) राघवचरणचिह्नशतकम्
३. गंगामहिम्नस्तोत्रम् (संस्कृत)
४. संस्कृत गीत कुसुमाञ्जलि
५. संस्कृत प्रार्थनाञ्जलि
६. कवित्त भाण्डागारम् (हिन्दी)

●

।। श्रीराघवो विजयतेतराम् ।।

आचार्यचरणानां बिरुदावली

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।
रामानन्दाचार्यं मन्दाकिनीविमलसलिलासिक्तम् ।
तुलसीपीठाधीश्वरदेवं जगद्गुरुं वन्दे ।।

श्रीमद् सीतारामपादपद्मपरागमकरन्दमधुव्रतश्रीसम्प्रदायप्रवर्तकसकलशास्त्रार्थ-महार्णवमन्दरमतिश्रीमदाद्यजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यचरणारविन्दचञ्चरीकः समस्त-वैष्णवालंकारभूताः आर्षवाङ्मयनिगमागमपुराणेतिहाससन्निहितगम्भीरतत्वान्वेषण-तत्पराः पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणाः सांख्ययोगन्यायवैशेषिकपूर्वमीमांसावेदान्तनारद-शाण्डिल्यभक्तिसूत्रगीतावाल्मीकीयरामायणः भागवतादिसिद्धान्तबोधपुरःसरसमधि-कृताशेषतुलसीदाससाहित्य-सौहित्यस्वाध्यायप्रवचनव्याख्यानपरमप्रवीणाः सनातनधर्म-संरक्षणधुरीणाः चतुराश्रमचातुर्वर्ण्यमर्यादासंरक्षणविचक्षणाः अनाद्यविच्छिन्नसद्गुरु-परम्पराप्राप्तश्रीमद्सीतारामभक्तिभागीरथीविगाहनविमलीकृतमानसाः श्रीमद्रामचरित-मानसराजमरालाः सततं शिशुरूपराघवलालनतत्पराः समस्तप्राच्यप्रतीच्यविद्या-विनोदितविपश्चितः राष्ट्रभाषागीर्वाणगिरामहाकवयः विद्वन्मूर्धन्याः श्रीमद्रामप्रेम-साधनधनधन्याः शास्त्रार्थरसिकशिरोमणयः विशिष्टाद्वैतवादानुवर्तिनः परमहंस-परिव्राजकाचार्यत्रिदण्डी वर्याः श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठाः प्रस्थानत्रयीभाष्यकाराः श्रीचित्रकूटस्थ-मन्दाकिनीविमलपुलिननिवासिनः श्रीतुलसीपीठाधीश्वराः श्रीमद्जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्याः अनन्तश्रीसमलंकृतश्रीश्रीरामभद्राचार्यमहाराजाः विजयतेतराम् ।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

●

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।
।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

ऐतरेयोपनिषदि
श्रीराघवकृपाभाष्यम्

पदवाक्यप्रमाणपारावारीण-कवितार्किकचूडामणि-वाचस्पति-
जगद्गुरुरामानन्दाचार्य-स्वामि-रामभद्राचार्य-प्रणीतं,
श्रीमज्जगद्गुरु-रामानन्दाचार्यसम्प्रदायानुसारि-
विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तप्रतिपादकश्रीराघवकृपाभाष्यम् ।।

।। श्री राघवो विजयते ।।

।। श्री रामान्दाचार्यायनमः ।।

।।अथ ऐतरेयोपनिषदि ।।

श्री राघवकृपाभाष्यम्

मंगलाचरणम्

पाथोजकन्दशरदिन्दुमधुव्रतेभ
पञ्चास्यमारकतमन्मथदर्पहारी ।
रामोलसन्मुनिपटेषुधिचापबाणः
सीतापतिर्विजयते श्रितचित्रकूटः ।।१।।

नवजलधरकान्तो लोललोलालकान्तो
गुणमहितदिगन्तो भूषणोद्यद्वसन्तः ।
किलकितकलवाचा रञ्जयन् मातृवर्गं
पितुरजिरगतः श्रीराघवः शान्तनोतु ।।२।।

।। शान्तिपाठः ।।

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि । वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः । अनेनाधीतेनाहोरात्रान्सन्दधाम्यमृतं वादिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु ममवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ।।

ॐ शान्तिः । शान्तिः ।। शान्तिः ।।।

अथ ऋग्वेदीयैतरीयोपनिषद् व्याख्यायते । श्रीराघवकृपाभाष्य नाम्ना नातिदीर्घसंक्षेपेण निराकृतप्रतिपक्षप्रत्याक्षेपेण सन्निहितश्रीसीतारामचरणनीरजनिक्षेपेण विवरणविशेषेण । तत्र प्रथमं शान्तिपाठः वागित्यादि । हे परमेश्वर ! मे मनसि वाक् प्रतिष्ठिता भवतु,

यथा मनोदेवतेन चन्द्रेण अग्निदैवतां वाचं शीतलां कुर्याम् । एवं मे मनः वाचि प्रतिष्ठितं भवतु, यथा मनोदैवतचन्द्रसुधया वाणीं सुधामयीं कुर्याम् । निजाध्ययनेन अहोरात्रान् संदधामि, इमे मनोवाचौ मयि वैदिकंज्ञानमानयताम् । श्रुतं मां मा प्रहासीःत्र व्यत्ययात् पुरुषविपर्ययः । शेषं सुगमम् ।।श्रीः।।

।। अथ प्रथमोऽध्यायः ।।

प्रथमः खण्डः

इतरा काचित् ब्राह्मणपत्नी, इं कामं तरति या सा इतरा, तस्याः इतरायाः अपत्यं पुमान् ऐतरेयः काश्चिदृषिः । **स्त्रीभ्योढक्** (पा०अ० ४/१/१२०) इत्यनेनढक् प्रत्ययः एयादेशो वृद्धिश्च । तेन ऐतरयेण प्रोक्ता उपनिषत् इति ऐतरेयोपनिषत् । उप परमात्मनः समीपं निषीदति इत्युपनिषत् साक्षाद् भगवन्महत्वप्रतिपादनपरत्वात्—

ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् । नान्यत्किञ्चन मिषत् । स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ।।१।।

ओमिति भगवत्समरणम्, अग्रे सृष्टेः प्राक इदं चिदचिदात्मकं जीवजगत् वै निश्चयेन एकः आत्मा प्रधानतया परमात्मैवासीत् । तदा जीवात्मा नामरूपविमुक्तः परमात्मलीसत्ताक आसीत । यद् वा आत्मा, एकः इत्युभयत्र **व्यत्ययो बहुलम्** (पा०अ० ३/१/८५) इत्यनेन ङ्यर्थे सु । तथा सृष्टेः प्राक इदं जीवजगत् एकस्मिन् परमात्मन्येव आसीत् । तदा तदन्यत् किञ्चन न मिषत् न दर्शनक्षममासीत् । स परमात्मा ईक्षत **व्यत्यादडभावः**, ईक्षणं संकल्पं कृतवान् । यज्जीवभोगार्थं तेषामानुकूल्येन लोकान् सृजै रचयै, इति शब्दः ईक्षणप्रकारसूचकः ।।श्रीः।।

लोकसर्जना प्रकारमाह—

स इमाँल्लोकानसृजत् । अम्भो मरीचीर्मरमापोदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठान्तरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः ।।२।।

परमात्मा अम्भः, मरीचीः, मरम् आपः इति चतुः संज्ञान्वितान् चतुर्विधान् लोकान् असृजत । तेषामाशयं श्रुतिः स्वयमेव प्राह—परेण दिवं, स्वर्गलोकादनन्तरं महरादयः पञ्चलोकाः, मरीचीः दिवः पूर्वमन्तरिक्षं, किरणमयत्वात् मरीचिसंज्ञा । मरं पृथ्वी मृत्युमयत्वात् । आपः पृथिवीतो अधस्तात् अतलादयः सप्त आपः जलमयत्वात् ।।श्रीः।।

स ईक्षतेमे नु लोका लोकपान्नु सृजा इति सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्छयत् ।।३।।

परमात्मा लोकपालचिकीर्षया पुरुषसंज्ञं जीवात्मानमेव अमूर्छयत् विस्तारयामास ।।श्रीः।।

विस्तारप्रकारमाह—

तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाण्डं मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतामक्षिभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्राद्दिशस्त्वङ्निरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या आपानोऽपानान्मृत्युः शिश्नं निरभिद्यत शिश्नाद्रेतो रेतस आपः ।।४।।

परमात्मा तपः ज्ञानं अतप्यत् समालोचितवान् । अनन्तरं तस्य मुखं निरभिद्यत, मुखाद् वाणी, ततो अग्निः । एवं नासादयः तेषां देवताः ।।श्रीः।।

।। इति प्रथमः खण्डः ।।

।। अथ द्वितीयः खण्डः ।।

अथ अन्नरचनाप्रकारमाह—

ता एता देवता सृष्टा अस्मिन् महत्यर्णवे प्रापतंस्तमशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत् ता एनमब्रुबन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति ।।१।।

रा०क०भा०—संसारोऽयं महार्णवः तत्र पतिताः देवताः क्षुत्पिपासाकुलाः निवासाय भोजनाय च पुरुषमभ्यर्थितवत्यः ।।श्रीः।।

आनन्तरिकघटनामाह—

ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ।
ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ।।२।।

ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन् सुकृतं बतेति ।
पुरुषो वाव सुकृतम् ।
ता अब्रवीद्यथायतनं प्रविशतेति ।।३।।

गामश्वञ्च समालोक्य न तृप्तान् वीक्ष्य वै सुरान् ।
नरं ससर्ज ते तुष्टाः तं प्रवेष्टुं स आदिशत् ।।श्रीः।।

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुभूत्वाक्षिणी प्रवशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन् ।।४।।

अग्न्यादयो वागादि भूत्वा मुखादीन् प्राविशन् देवानां इनिद्रयावतारः इति श्रौतार्थः ।।श्रीः।।

तमशनायापिपासे अब्रूतामावाभ्यामभिप्रजानीहीति । ते अब्रवीदेतास्वेव वां देवतास्वाभजाम्येतासु भागिन्यौ करोमीति । तस्माद्यस्यै च देवतायै हविर्गृह्यते भागिन्यावेवास्यामशनायापिपासे भवतः ।।५।।

अशनाया बुभुक्षा ।

क्षुत्पिपासार्थमेवासौ देवेष्वायतनं व्यधात् ।
हविर्ग्रहणकाले ते तान् दृश्येत उपस्थिते ।।श्रीः।।

।। इति द्वितीयः खण्डः ।।

।। अथ तृतीयः खण्डः ।।

अथान्नरचना प्रकारमाह—

स ईक्षतेमे नु लोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यः सृजा इति ।।१।।

सोऽपोऽभ्यतपत्ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्तिरजायत । या वै सा मूर्तिरजायतान्नं वै तत् ।।२।।

तदेनत्सृष्टं पराङ्त्यजिघांसत्तद्वाचाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोद्वाचा ग्रहीतुम् । स यद्धैनद्वाचाग्रहैष्यदभिव्याहृत्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ।।३।।

तत्प्राणेनाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोत्प्राणेन ग्रहीतुं स ।
यद्धैनत्प्रणेनाग्रहैष्यदभिप्राण्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ।।४।।

तच्चक्षुषाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्चक्षुणा ग्रहीतुं स यद्धैनच्चक्षुषाग्रहैष्यद् दृष्ट्वा हैन्नान्नमत्रप्स्यत् ।।५।।

तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेण ग्रहीतुं स यद्धैनच्छ्रोत्रेणाग्रष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ।।६।।

तत्त्वचाजिधृक्षत्तन्नाशक्नोत्त्वचा ग्रहीतुं सा यद्धैनत्वचाग्रहैष्यत्स्पृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ।।७।।

तन्मनसाजिधृक्षत्तन्नाशक्नोन्मनसा ग्रहीतुं सा यद्धैनन्मनसाग्रहैष्यद्ध्यात्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ।।८।।

तच्छिश्नेनाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्छिश्नेन ग्रहीतुं स यद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यद्विसृज्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ।।९।।

तदपानेनाजिधृक्षत्तदावयत् सैषोऽन्नास्य ग्रहो यद्वायुरत्नायुर्वा एष यद्वायुः ।।१०।।

मूर्तिः स्थूलपदार्थः ।

देवः ससर्ज जीवार्थं मूर्तिमन्नमभूत् किल ।
वागादीनि मनोऽन्तानि तद्ग्रहीतुं च नाशकन् ।।

अपानमावयत्तत्तु अतोऽन्नं वायुना धृतम् ।
वायव्यमन्न इत्याहुः श्रुतीनामाशयो ह्ययम् ।।श्रीः।।

अथात्ममीमासां निरूपयति—

स ईक्षत कथं न्विदं मदृते स्यादिति स ईक्षत कतरेण प्रपद्या इति । स ईक्षत यदि वाचाभिव्याहृतम् यदि प्राणेनाभिपप्राणितं यदि चक्षुषा ददृष्टं यदि श्रोत्रेण श्रुतं यदि त्वचा स्पृष्टं यदि मनसा ध्यातं यद्यपानेनाभ्यपानितं यदि शिश्नेन विसृष्टमथ कोऽहमिति ।।११।।

जीवेन सह परमात्मनः अस्त्यविनाभावसम्बन्धः । यथा चाह भगवान् गीतायाम् —**न तदस्तिविना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ।।** (गीता १०/४०) इतमेव प्रपञ्चयति । स इत्यादिना ईक्षणं हि विचारः । सः परमात्मा ईक्षत अडभावो व्यत्ययात् । इदं जीवभूतं चिदचिदात्मकं मदृते मां विहाय कथं स्यात् ? केन प्रकारेण तिष्ठेत् ? सखाहमेतस्य नित्यः शाश्वत सम्बन्धी च । यदि चेत् मां विना अने वाचा उच्येत ? नासया घ्रीयेत ? चक्षुषा दृश्येत ? त्वचा स्पृशेत ? रसनया रस्येत ? तर्हि कोऽहं, ममावश्यकता का ? अतो मया स्वसत्तारक्षणार्थं, जीवसुखार्थं च प्रतिशरीरं जीवात्मना सह भवितव्यम् । अथ मस्तिष्कचरणयोः कतरेण मित्रभूतमेतं प्रपद्ये ? इत्यात्मनि विचारयामास ।।श्रीः।।

अथ परमात्मप्रवेश प्रकारमाह—

स एतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत । सैषा विदृतिर्नाम द्वास्तदेतन्नान्दनम् । तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्नाः अयमासवथोऽयमासवथोऽयमासवथ इति ।।१२।।

स जातो भूतान्यभिव्यैख्यत् किमिहान्यं वावदिषदिति । स एतमेवपुरुषं ब्रह्म ततममपश्यत । इदमदर्शमिती ३ ।।१३।।

तस्मादिन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै नाम । तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याक्षचते परोक्षेण । परोक्षप्रिया इव हि देवाः परोक्षप्रिया इव हि देवाः ।।१४।।

सीमा शरीरान्तिमो भागः शीरोरूपः तं विदार्य तेनैव प्राविशत् अतस्तद् ब्रह्मरन्ध्रं कथ्यते । लोके विदृतिः विदीर्णत्वात् । तस्य परमात्मनः त्रयः आवसथाः वेदाः लेकाः । एवं त्रयः स्वप्नाः जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिरूपाः । एवं प्राप्त- भगवत्सहायपुरुषः प्रत्यगात्माजगद्विलोक्या चकितोभूत्वा तद्रचयितारम् अन्विच्छन् हृदयेऽन्तर्यामिणं निखिलजगत्स्वामिनं परमात्मानम् अदर्श । अतः इदम् अदर्शम् अतः संक्षिप्य इदन्द्रः कथ्यते । स एव देवानां परोक्षप्रियत्वात् इन्द्रः कथ्यते ।।श्रीः।।

।। इति तृतीय खण्डः ।।

इत्यैतरेयोपनिषदि प्रथमाध्याये जगद्गुरुरामानन्दाचार्य स्वामिरामभद्राचार्यप्रणीतं श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम् ।
।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

प्रथमः खण्डः

अथास्मिध्याये पुरुषस्य जन्मत्रयं वर्णयति—

पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति । यदेतद्रेतः तदेतत्सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः संभूतमात्मन्येवात्मानं बिभर्ति तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैनज्जनयति तस्य प्रथमं जन्म ।।१।।

तत् स्त्रिया आत्मभूतं गच्छति । यथा स्वमङ्गं तथा । तस्मादेनां न हिनस्ति । सास्यैतमात्मानमत्रगतं भावयति ।।२।।

सा भावयित्री भावयितव्या भवति । तं स्त्रीगमर्भं बिभर्ति । सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति । स यत्कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयत्यात्मानमेव तद्भावयत्येषां लोकानां सन्तत्या । एवं सन्तता हीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ।।३।।

सोऽस्यायमात्मा पुण्येभ्यः प्रतिधीयते । अथास्यामितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति । स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयं जन्म ।।४।।

तदुक्तमृषिणा-गर्भेनु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा । शतं मा पुर आयसीररक्षन्नधः श्येनो जवसा निरदीयमिति । गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच ।।५।।

स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन्त्स्वर्गे लोके सर्वान्कामानाप्त्वामृतः समभवत्समभवत् ।।६।।

आदिकर्ता परमात्मा स्वाङ्गोत्थेभ्यो रेतोभ्यः रेतसि दधाति, इदमस्य प्रथमं जन्म । पुनस्त्रियां सिञ्चति सा च सम्भावयित्री इमं कुमाररूपेण जनयति, इति द्वितीयं जन्म । स च जीवात्मा मृत्वा पुण्येन शुभं लोकं, पापेनाशुभं लोकं याति जायते च इति तृतीयं जन्म । एतदेव वामदेव ऋषिः प्राह गर्भे शयानोऽहं शातशत लौहशृङ्खलासदृशीः यातना अनुभूतवान् । अहं गर्भे निवासं कुर्वन् देवानां जनिमानि जन्मानि अवेदिषम् , ज्ञातवानभूवम् । मां शतसंख्याकाः श्रङ्खलाः अरक्षन् रक्षितवत्यः । अहं निजवेगात् तास्त्रोटयित्वा निरदीयं निरगच्छम् । गर्भे शयानः वामदेवः इत्थं कथयामास । एवं ज्ञात्वा अस्माद् देहात्समुत्थाय वामदेवः ब्रह्मलोके सर्वान् कामान् भुक्त्वा अमृतः अभवत् , मृतभिन्नो भगवच्छ्रीराम परिकरप्रधानतामगमत् । अत एव मानसे—

वामदेव रघुकुल गुरु ज्ञानी
बहुरि गाधि सुत कथा बखानी ।।

मानस १/३६१/१ ।।श्रीः।।

।। इति प्रथमः खण्डः ।।

इत्यैतरेयोपनिषदि द्वितीयाध्याये जगद्गुरुरामानन्दाचार्य स्वामिरामभद्राचार्यप्रणीतं श्रीराघाकृभाष्यं सम्पूर्णम् ।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

।। अथ तृतीयोऽध्यायः ।।

प्रथमः खण्डः

अथास्मिन्नध्याये आत्मा मीमांस्यते—

कोयमात्मेति वयमुपास्महे । तकरः स आत्मा, येन वा पश्यति, येन वा श्रृषोति येन वा गन्धानाजिघ्रति येन वा वाचं व्याकरोति येनवा स्वादु चास्वादु च विजानाति ।।१।।

यदेतद् हृदयं मनश्चैतत् । संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेघा दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति सवाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति ।।२।।

एव ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्चमहाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतींषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि च जारुजानि च स्वेदजानि चोद्भिजानि चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो यत्किंचेदं प्राणि जङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरं सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रम् । प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म ।।३।।

स एतेन प्रज्ञानेनात्मनास्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वामृतः समभवत्समभवत् ।।४।।

अत्र वर्णितचरौ परमात्मप्रत्यगात्मानौ, परमात्मा स्रष्टा प्रत्यगात्मा जीवश्च शरीरनिवासी। अनयोः कतरोऽयमात्मा ? यं वयमुपास्महे, सेवामहे। येन सहायभूतेन पश्यति जगत् साक्षात् करोति चक्षुषा जीवात्मा, येन करणीभूतेन जीवात्मा श्रृणोति शब्दाननुभवति। पुनःयेन दत्तशक्तिना गन्धानाजिघ्रति घ्राणविषयं करोति। येन वाचं वाणीं व्यारोति निर्धारयति, दत्त विवेकबलेन। येन च दत्तयसामर्थ्येन स्वादु अस्वादु च विजानाति। स एव करणकारकीभूतो यत् पदार्थः परमात्मा उपास्यः।

यथोक्तं ध्रुवेण—

योऽन्तः प्रविश्य ममवाचमिमां प्रसुप्तां
संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ।

(भा० ४/९/५)

एवं पश्यत्यादिविजानात्यन्तानां क्रियाणां कर्ता जीवात्मा समुपासकः । एवं तृतीयैकवचनान्तयच्छब्दवाच्यः परमात्मा उपास्यः , इति श्रौततात्पर्यम् ।

अथ द्वितीये तस्य निवासस्थानपर्यायाणि निरूपयति । स हृदये विलोक्यते, हृदि अयम् इमौ द्वौ शब्दौ यत्र तद्धृदयम् । तस्यैव मन आदयो नामविशेषाः । एवं सर्वाणि प्रज्ञानब्रह्मणः नामधेयानि अस्तित्वसूचकनामानि । शरीरशरीरिभावेन विशेषणविशेष्यभावेन च नीलमुत्पलमित्यादिवत् । जगज्जगदीशयोरभेदं प्रतिपत्तुं तृतीये समानाधिकरणशब्दावलिमाह—इन्द्रादि क्षुद्रजीवपर्यन्तानि भगवच्छरीराणि सर्वमिदं चिद्चिदात्मकं प्रज्ञानेत्रम् । प्रज्ञा परमचेतना एव नेत्रं यस्य तथाभूतम् । एवं चिद्चिदात्मकं जगत् प्रज्ञाने परब्रह्मणि प्रतिष्ठितम् । लोकोऽपि प्रज्ञयैव नीयते । एवं प्रज्ञैव सर्वेषां प्रतिष्ठा, तथैव प्रज्ञानं प्रकृष्टज्ञानवत् ब्रह्म । जीवात्मनि ज्ञानं सदपि निकृष्टमज्ञानेनावृतत्वात् । **अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्** (गीता ५/१५) ब्रह्म प्रकृष्ट ज्ञानवत् , अज्ञाननिरवच्छिन्नत्वात् । प्रकृष्टं ज्ञानं यस्य तत् प्रज्ञानम् एवं भूतं ब्रह्म । स एतेन प्रज्ञेन परमात्मना कृतसहायेन अयं जीवात्मा अस्मात् लोकादुत्क्रम्य मर्त्यलोकोत्क्रमणं विधाय अमुष्मिन् स्वर्गे स्वर्लोके गीयते इति स्वर्गः साकेत लोकः, तस्मिन् सर्वान् कामान् भगवत्प्रसादभूतान् आप्त्वा प्राप्य अमृतः समभवत् , भगवत् कैङ्कर्यजन्यपरमानन्दामृतसम्पन्नः समभवत् । द्विरुक्तिरादरार्थाः ।

हे राम राघव रघूत्तम रावणारे
हे जानकीश जनचातकवारिवाह ।
हे देव हे पतितपावन रामभद्रा-
चार्यं करालकलितं परिपाहि पापात् ।।

ऐतरेयोपनिषदो रामभद्रार्यसूरिणा ।
श्री राघवकृपाभाष्यं कृतं सीतेशतुष्टये ।।

श्रीराघवकृपाभाष्यं श्रीराघवकृपाकृतम् ।
श्रीराघवकृपां देयाच्छ्रीराघवकृपाफलम् ।।

इत्येतरेयोपनिषदि श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्य प्रणीतं तृतीयाध्याये श्रीराघवकृपाभाष्यंसम्पूर्णम् ।

।। श्रीराघवोः शन्तनोतु ।।

●

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

ऐतरेयोपनिषद्

श्रीराघवकृपाभाष्य

श्री ऐतरेयोपनिषत् का
पदवाक्यप्रमाणपारावारीण-
कवितार्किकचूडामणि वाचस्पति-
श्री जगद्गुरूरामानन्दाचार्य स्वामि रामभद्राचार्य-
प्रणीत श्रीमज्जगद्गुरूरामानन्दाचार्यसम्प्रदायानुसारि
विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्त-प्रतिपादक श्रीराघवकृपाभाष्य ।।

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

अथ ऐतरेयोपनिषद्

श्रीराघवकृपाभाष्य

।। मङ्गलाचरण ।।

पाथोजकन्दशरदिन्दुमधुव्रतेभ,
पञ्चास्यमारकतमन्मथदर्पहारी ।
रामोलसन्मुनिपटेषुधिचापबाणः,
सीतापतिर्विजयते श्रितचित्रकूटः ।।१।।

नवजलधरकान्तो लोललोलालकान्तो,
गुणमहितदिगन्तो भूषणोद्यद्वसन्तः ।
किलकितकलवाचा रञ्जयन् मातृवर्णं,
पितुरजिरगतः श्रीराघवः शन्तनोतु ।।२।।

प्रनवऊँ सीताराम पवनसुत गौर गिरीसा ।
हृदय राखि गुरुदेव चरन हनुमान हरीसा ।।
सम्प्रदाय सम्मान विशिष्टाद्वैत मनोहर ।
सीताराम भक्ति भागीरथि यथामति भाखौं ।
रामभद्र आचार्य जेहिं रामभद्र रस चाखौं ।।

।। शान्तिपाठ ।।

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः। अनेनाधीतेनाहोरात्रान्सन्दधाम्यमृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्।।

ॐ शान्तिः। शान्तिः।। शान्तिः।।।

अब श्रीसीतारामजी की कृपा से ऐतरेयोपनिषद् पर श्रीराघवकृपाभाष्य किया जा रहा है। उसमें पहले शान्तिपाठ द्वारा ऋषि प्रार्थना करते हैं कि— हे परमेश्वर! मेरी वाणी मेरे मन में प्रतिष्ठित हो और मेरा मन मेरी वाणी में प्रतिष्ठित हो। जिससे मैं मनन करके बोलूँ और बोले हुए विषय का मनन करूँ। वाणी के देवता अग्नि को तेजस्वी बनाऊँ और मन के देवता चन्द्र से वाणी को शीतल कर लूँ। यही बात सन्त कबीर भी कहते हैं—

ऐसी बाणी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करै आपहुँ शीतल होय।।

और हे भगवन्! आप मेरे समक्ष प्रकट हों। मन और वाणी मुझ में वेद के गम्भीर तत्व को प्रकट करें। शास्त्र मुझे न छोड़े इस वैदिक अध्ययन से मैं दिन-रात को जोड़ दूँ अर्थात् मैं दिन-रात एक करके वेद का अध्ययन करूँ। मैं यथार्थ बोलूँगा, मैं सन्तों के लिए हितकर बोलूँगा। इसलिए आप मेरी रक्षा कीजिए। इसलिए वेद के वक्ता की भी रक्षा कीजिए। मेरी और वेदवक्ता की रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए। जीवों के तीनों ताप के शान्ति के लिए तीन बार शान्ति का उच्चारण किया गया।। श्री।।

।। अथ प्रथमअध्याय ।।

।। प्रथम खण्ड ।।

सम्बन्ध– 'इ' अर्थात् काम को पार करने वाली एक ब्राह्मण पत्नी का नाम इतरा है। इम् कामं तरति या सा इतरा। उस इतरा के बेटे को ऐतरेय कहते हैं। इतरायाः अपत्यं ऐतरेयः। उसी ऐतरेय नाम महर्षि ने यह उपनिषद् कही इसीलिए इसे ऐतरेयोपनिषद् कहते हैं। जो लोग तथाकथित समाजसुधार की लिप्सा से इतरा शब्द को जाति वाचक और वर्णेयतरा के अर्थ में मान लेते हैं, उन अल्पमेधष्कों को कम से कम इतना तो समझ लेना चाहिए कि— ढक् प्रत्यय स्त्रीलिंग में वर्तमान किसी व्यक्तिवाचक संज्ञा से होता है। स्त्रीभ्योढक् (पा०अ०- ४/१/१२०) अतः यहाँ इतरा ऋषि पत्नी का ही नाम है।। श्री ।।

ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत्किञ्चन मिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– सृष्टि के पहले यह सम्पूर्ण जगत् एकमात्र आत्मप्रधानसत्ता कथा अर्थात् उस समय केवल परमात्मा की कृपा से इस जीव जगत् का कोई नाम रूप नहीं था। यह सब कुछ परमात्मा में ही छिपा हुआ था। परमात्मा ने ईक्षण अर्थात् संकल्प किया "अब मैं जीव के भोगार्थ उसके अनुकूल लोकों की रचना करूँ" ।। श्री ।।

व्याख्या– यहाँ व्युत्ययो बहुलम् (पा०अ०- ३/१/८५) सूत्र से आत्मा और एक शब्द में सप्तमी एकवचन ङि के अर्थ में सु हुआ है। अर्थात् सृष्टि के पहले सम्पूर्ण जीवजगत् एक मात्र परब्रह्म परमात्मा में ही लीन था और कोई भी चिद् या अचिद् कोई चेष्टा नहीं कर रहा था। ईक्षत् शब्द लङ् लकार प्रथमपुरुष एकवचन में है। यहाँ भी व्यत्यय से आट् का अभाव अर्थात् ऐक्षत् के स्थान पर ईक्षत् प्रयोग हुआ। 'सृजै' सृज् धातु आत्मनेपद लोट्लकार उत्तमपुरुष एकवचन का रूप है।। श्री ।।

संगति– अब लोक की सर्जना का प्रकार कह रहे हैं॥ श्री॥

स इमाँल्लोकानसृजत्। अम्भो मरीचीर्मरमापोदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः ॥२॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– भगवान् 'आप' ने संज्ञक चार लोकों की रचना की जिसमें स्वर्ग ही अम्भ है। जो स्वर्ग और आकाश में प्रतिष्ठित है। इसमें अतिरिक्त महर, जन, तप, सत्य ये चार मरीचिसंज्ञक हैं। क्योंकि ये प्रकाशबहुल होते हैं। पृथ्वी मर है। क्योंकि यहीं लोग मरते हैं। अतलादि सात लोक आप हैं। जो पृथ्वी से नीचे हैं और जिनमें जल की बहुलता है॥ श्री॥

स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नु सृजा इति सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्च्छयत् ॥३॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– परमात्मा ने संकल्प किया— ये लोक तो बना दिये। अब लोकपालों की रचना करनी चाहिए। इसलिए जल में से ही निकाल कर परमेश्वर ने पुरुष को विस्तारित कर दिया॥ श्री॥

संगति– अब जीवात्मा के विस्तार का प्रकार कहते हैं॥ श्री॥

तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाण्डं मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतामक्षिभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्राद्दिशस्त्वङ्निरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या आपानोऽपानान्मृत्युः शिश्नं निरभिद्यत शिश्नाद्रेतो रेतस आपः ॥४॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अब परमात्मा ने उस पुरुष में ज्ञान का संचार किया। इस प्रकार परमात्मा से तेजायित पुरुष का मुख निकला। जैसे गर्भ से कोई अण्डा निकलता है। मुख से वाणी और वाणी से अग्नि

प्रकट हुई। फिर प्राण से वायु उत्पन्न हुए। फिर विराट् पुरुष की दो आँखें प्रकट हुईं उनसे चक्षु अर्थात् दर्शनशक्ति एवं उस चक्षु से सूर्य नारायण प्रकट हुए। अनन्तर पुरुष के कान उत्पन्न हुए। कानों से श्रवणशक्ति और श्रवण से दिशा उत्पन्न हुई। फिर पुरुष की त्वाचाएँ निकली, त्वचाओं से रोम और रोम से औषधियाँ उत्पन्न हुईं। फिर पुरुष का हृदय निकला, उससे मन और मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार पुरुष की नाभि उत्पन्न हुई। नाभि से अपान और अपान से मृत्यु उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार पुरुष का शिश्न। शिश्न से रेतस् और उससे सामान्य जलों की उत्पत्ति हुई॥ श्री॥

॥ इति ऐतरेयोपनिषद् के प्रथम अध्याय का
प्रथम खण्ड सम्पन्न हुआ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु॥

•

॥ अथ द्वितीय खण्ड॥

संगति– अब अन्न की रचना का प्रकार कहते हैं॥ श्री॥

ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन् महत्यर्णवे प्रापतंस्तमशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत्। ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति॥१॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– वे देवता भगवान् के द्वारा रचे जाने पर इस महासंसारसागर में पड़ गये। ऐसे इस जीवात्मा को भूख और प्यास ने घेर लिया। अब ईश्वर ने सोचा 'इसे मैं अन्न दूँ'॥ श्री॥

संगति– अब इसके बाद होने वाली घटना कहते हैं॥ श्री॥

ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति।
ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति॥२॥

ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन् सुकृतं बतेति।
पुरुषो वाव सुकृतम्।
ता अब्रवीद्यथाऽऽयतनं प्रविशतेति॥३॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– उन देवताओं के लिए परमात्मा गाय लाये। देवताओं ने कहा— यह हमारे लिए प्रर्याप्त नहीं है। फिर परमात्मा घोड़ा लाये। देवताओं ने कहा— यह भी हमारे लिए पर्याप्त नहीं है। फिर परमात्मा ने पुरुष का निर्माण कर उसी को उपस्थित किया। उसे देख कर देवता प्रसन्न होकर बोले— भगवन्! यह बहुत सुन्दर रचना है। भगवान् ने कहा फिर इसी में तुम सब प्रवेश कर जाओ और अब देवताओं ने पुरुष में प्रवेश करने का निश्चय किया॥ श्री॥

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्रावशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशँश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्॥४॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अग्नि वाणी बन कर मुख में प्रविष्ट हुए। वायु प्राण बन कर नासिका में। आदित्य चक्षु बन कर नेत्रों में। दिशायें श्रोत्र बन कर कर्णों में। ओषधियाँ रोम बन कर त्वचाओं में, चन्द्रमा मन बन कर हृदय में, मृत्यु अपान बनकर नाभि में तथा जल के देवता वरुण रेत बनकर शिश्न में प्रविष्ट हुए। यही देवताओं का इन्द्रिय अवतार है॥ श्री॥

तमशनायापिपासे अब्रूतामावाभ्यामभिप्रजानीहीति। ते अब्रवीदेतास्वेव वां देवतास्वाभजाम्येतासु भागिन्यौ करोमीति। तस्माद्यस्यै च देवतायै हविर्गृह्यते भागिन्यावेवास्यामशनायापिपासे भवतः॥५॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– संस्कृत में भूख को अशनाया कहते हैं। भूख और प्यास ने परमात्मा से कहा— हमारे लिए कोई स्थान बनाइये। तब भगवान् ने कहा— हम तुम दोनों को इन देवों में बाँट देते हैं। जब इनको हवि दी जायेगी तब तुम दोनों इन्हें दिखाई पड़ोगी॥ श्री॥

॥ इति ऐतरेयोपनिषद् के प्रथम अध्याय का द्वितीय खण्ड सम्पन्न हुआ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु॥

●

।। अथ तृतीय खण्ड ।।

संगति– अब अन्न की रचना का प्रकार कहते हैं।। श्री ।।

स ईक्षतेमे नु लोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यः सृजा इति ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– परमात्मा ने संकल्प किया कि— ये लोक और लोकपाल बना दिये गये, अब मैं इनके लिए अन्न की रचना करूँ ।। श्री ।।

सोऽपोऽभ्यतपत्ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्तिरजायत। या वै सा मूर्तिरजायताऽन्नं वै तत् ।।२।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– फिर परमात्मा ने जल को अपने तेज से आविष्ट किया और परमात्मा से तेजायित जल से एक मूर्ति अन्न बन गयी ।। श्री ।।

तदेनत्सृष्टं पराङत्यजिघांसत्तद्वाचा जिघृक्षत्तन्नाशक्नोद्वाचा ग्रहीतुम्। स यद्धैनद्वाचाऽग्रहैष्यदभिव्याहृत्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ।।३।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– उस अन्न को पुरुष ने वाणी से ग्रहण करना चाहा पर नहीं ग्रहण कर सका। यदि वाणी से ग्रहण कर सकता तो अन्न को बोल कर ही तृप्त हो जाता और भोजन की आवश्यकता न होती ।। श्री ।।

तत्प्राणेनाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोत्प्राणेन ग्रहीतुं स।
यद्धैनत्प्रणेनाग्रहैष्यदभिप्राण्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ।।४।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– तब पुरुष ने उसे नाम से ग्रहण करना चाहा पर नहीं ग्रहण कर सका। यदि अन्न को प्राण से ग्रहण कर लेता तो फिर अन्न को सूँघ कर ही तृप्त हो जाता।। श्री ।।

तच्चक्षुषाऽजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्चक्षुषा ग्रहीतुं स यद्धैनच्चक्षुषाऽग्रहैष्यद् दृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ।।५।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– तब पुरुष ने अन्न को नेत्र से ग्रहण करना

चाहा। पर ऐसा नहीं कर सका। यदि वह नेत्र से ग्रहण कर लेता तो अन्न को देख कर ही तृप्त हो लेता॥ श्री॥

तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेण ग्रहीतुं स यद्धैनच्छ्रोत्रेणाग्रहैष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥६॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अब पुरुष ने अन्न को श्रवण से ग्रहण करना चाहा, पर ग्रहण नहीं कर सका। यदि श्रवण से ग्रहण कर लेता तो फिर अन्न को सुन कर ही तृप्त हो जाता॥ श्री॥

तत्त्वचाऽजिघृक्षत्तन्नाशक्नोत्त्वचा ग्रहीतुं सा यद्धैनत्वचाऽग्रहैष्यत्स्पृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥७॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– उसने त्वचा से अन्न को ग्रहण करना चाहा पर नहीं ग्रहण कर सका। यदि त्वचा से ग्रहण कर लेता तो अन्न को स्पर्श करके ही तृप्त हो जाता॥ श्री॥

तन्मनसाऽजिघृक्षत्तन्नाशक्नोन्मनसा ग्रहीतुं सा यद्धैनन्मनसाऽग्रहैष्यद्ध्यात्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥८॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– उसने मन से अन्न को ग्रहण करना चाहा पर नहीं ग्रहण कर सका। यदि मन से अन्न ग्रहण कर सकता तो अन्न को ध्यान करके ही तृप्त हो जाता॥ श्री॥

तच्छिश्नेनाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्छिश्नेन ग्रहीतुं स यद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यद्विसृज्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥९॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– उसने शिश्न से अन्न को ग्रहण करना चाहा पर नहीं ग्रहण कर सका। मदा शिश्न से अन्न ग्रहण कर सकता तो विसर्जन करके ही तृप्त हो जाता॥ श्री॥

तदपानेनाजिघृक्षत्तदावयत् सैषोऽन्नस्य ग्रहो यद्वायुरन्नमायुर्वा एष यद्वायुः ॥१०॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अन्त में पुरुष ने अपान वायु से अन्न

को ग्रहण करना चाहा और उसने अन्न को ग्रहण कर लिया। अर्थात् खाकर अन्न निगल गया। यही अन्न को ग्रहण करने वाला है इसी को वायु कहते हैं। 'आवयति इति वायुः' अर्थात् जो ग्रहण कर ले उसे वायु कहते हैं ॥ श्री ॥

संगति– अब आत्म-मीमांसा का निरूपण करते हैं ॥ श्री ॥

स ईक्षत कथं न्विदं मदृते स्यादिति स ईक्षत कतरेण प्रपद्या इति। स ईक्षत यदि वाचाऽभिव्याहृतम् यदि प्राणेनाभिप्राणितं यदि चक्षुषा दृष्टं यदि श्रोत्रेण श्रुतं यदि त्वचा स्पृष्टं यदि मनसा ध्यातं यद्यपानेनाभ्यपानितं यदि शिश्नेन विसृष्टमथ कोऽहमिति ॥ ११ ॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– उस परमात्मा ने विचार किया कि— यह जीव मेरे बिना कैसे रह सकेगा। मैं इसका नित्य सखा और शाश्वत सम्बन्धी हूँ। इससे एक क्षण यह मेरे बिना नहीं रह सकता। अतः मैं इसके लिए रचे हुए शरीर में चरण या मस्तिष्क इनमें से किस मार्ग से प्रवेश करूँ। यदि यह वाणी से बोलता है, जिसकी प्रेरणा से नाक से सूँघता है, जिसकी इच्छा से नेत्र से देखता है, कान से सुनता है, जिसकी इच्छा से रसना से स्वाद लेता है, त्वक् से छूता है, जिसकी संकल्प शक्ति से यह मन से ध्यान करता है, अपान से ग्रहण और शिश्न से विसर्जन करता है, वह मैं कौन हूँ ?

व्याख्या– यहाँ 'ईक्षत्' शब्द का तीन बार प्रयोग करके भगवती श्रुति ने सत्यसंकल्प परमात्मा की ईक्षण की ओर संकेत किया है। क्योंकि श्रुति और स्मृति इन दोनों ने ही जीवात्मा के साथ परमात्मा का अविनाभावसम्बन्ध सिद्ध किया है। गीता (१०/४०) में भगवान् कृष्ण स्वयं कहते हैं— हे अर्जुन! सम्पूर्ण भूतों का जो बीज है, वह मैं हूँ। संसार में जड़-चेतन ऐसा कुछ भी नहीं है जो मेरे बिना रह सके। अर्थात् मैं प्रत्येक क्षण प्रत्येक प्राणी के साथ रहता हूँ। इसी सिद्धान्त का प्रस्तुत ऐतरेय श्रुति ने प्रपञ्चन किया है ॥ श्री ॥

संगति– अब परमात्मा के प्रवेश का प्रकार कहते हैं ॥ श्री ॥

स एतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत। सैषा विदृतिर्नाम द्वास्तदेतन्नान्दनम्। तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्नाः अयमावसथोऽयमासवथोऽयमासवथ इति ॥१२॥

स जातो भूतान्यभिव्यैख्यत् किमिहान्यं वावदिषदिति। स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यत्। इदमदर्शमिती ३ ॥१३॥

तस्मादिन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै नाम। तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याक्षचते परोक्षेण। परोक्षप्रिया इव हि देवाः परोक्षप्रिया इव हि देवाः ॥१४॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अब परमात्मा ने पुरुष की सीमा अर्थात् शिर के मध्य भाग्य को विदीर्ण करके इसी द्वार से पुरुष के शरीर में प्रवेश किया। इसलिए इसको ब्रह्मरन्ध्र और विदृति भी कहते हैं और इसको नानन्दन भी कहते हैं। इस परमात्मा के तीनों लोक और तीनों वेद, आवसथ अर्थात् निवास स्थान है। वस्तुतः नित्य, मुक्त, बद्ध भेद से जीवात्मा तीन प्रकार का है। उसके ये तीन शरीर ही परमात्मा के तीन आवसथ अर्थात् तीन गृह हैं। इन्हीं को श्रुति ने अयं कह कर तीन बार संकेतित किया। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति यही तीन इसके स्वप्न हैं। अर्थात् जीवात्मा के शरीर में रहते हुए परमात्मा तीनों अवस्थाओं में सोते रहते हैं। इसलिए उनको 'पुरुष' कहते हैं। पुर, उ, ष याने जो जीवात्मा के शरीररूप पुर में निश्चयपूर्वक निश्चिन्तता से सोते हैं वही परमात्मा पुरुष हैं। 'पुर् शरीर उ निश्चयेन शेते इति पुरुषः।' यहाँ प्रषरोदरादित्वात् 'श' के स्थान पर मूर्धन्य 'ष' हो गया है॥ श्री॥

इस प्रकार जीवात्मा के शरीर में जब परमात्मा ने प्रवेश किया तब जन्म लेते ही जीवात्मा ने देखा— अरे! यहाँ मेरे अतिरिक्त दूसरा कौन चेष्टा कर रहा है। अनन्तर उस जीव आत्मा ने अपने चारों ओर व्याप्त ब्रह्म को ही देखा। और भाव से बोला 'इदमदर्शम्' अर्थात् बहुत काल से भूले हुए इस अपने मित्र को अभी-अभी मैंने देख लिया। चूँकि जीवात्मा ने 'ईदमदर्शं' शब्द कह कर बार-बार चिल्लाया इसीलिए संक्षेप में इसे इदन्द्र कहने लगे। और परोक्ष से इस जीवात्मा को देवता इन्द्र कहने लगे

और इसे भी बहुत अच्छा लगा क्योंकि देवता परोक्ष प्रिय होते हैं। इस सिद्धान्त को दृढ़ करने के लिए श्रुति इस वाक्य को दुहराती हैं। देवता परोक्ष प्रिय होते हैं थोड़ा-सा करके अपना नाम बहुत चाहते हैं। परन्तु दैवीसम्पत्ति के लोग अपने को परोक्ष में रखना चाहते हैं, सम्भवतः इसीलिए सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत में शुक्राचार्य के परमगुरु श्रीराधा रानी ने प्रत्यक्षरूप से अपना नाम भी नहीं आने दिया। यद्यपि परोक्षरूप में अपने प्रथम मंगलाचरण अर्थात् भागवत् (२/४/१४/३) में श्रीशुक्राचार्य ने परोक्षरूप में राधा जी का नाम ले लिया है ॥ श्री ॥

॥ इति ऐतरेयोपनिषद् के प्रथम अध्याय पर श्रीराघवकृपाभाष्य सम्पन्न हुआ ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥

●

॥ अथ द्वितीयअध्याय ॥

॥ प्रथम खण्ड ॥

संगति– अब इस अध्याय में पुरुष के तीन जन्मों का वर्णन करते हैं। वास्तव में जब पिता कोई विशेष अन्न खाता है उसी के साथ जन्म लेने वाला जीवात्मा पिता के मन में प्रवेश कर जाता है। फिर वह पिता के रेत में प्रवेश करके माता के गर्भ में आता है। और फिर दशवें महीने माँ के गर्भ से जन्म लेता है। यही जीवात्मा के जन्म की सामान्य प्रक्रिया है ॥ श्री ॥

पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति। यदेतद्रेतः तदेतत्सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः संभूतमात्मन्येवात्मानं बिभर्ति तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैनज्जनयति तस्य प्रथमं जन्म ॥१॥

तत् स्त्रिया आत्मभूतं गच्छति। यथा स्वमङ्गं तथा। तस्मादेनां न हिनस्ति। साऽस्यै तमात्मानमत्रगतं भावयति ॥२॥

सा भावयित्री भावयितव्या भवति। तं स्त्रीगर्भं बिभर्ति। सोऽग्र

एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति। स यत्कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधि-भावयत्यात्मानमेव तद्भावयत्येषां लोकानां सन्तत्या। एवं सन्तता हीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ॥३॥

सोऽस्यायमात्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः प्रतिधीयते। अथास्यमितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति। स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयं जन्म ॥४॥

तदुक्तमृषिणा— गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा। शतं मा पुर आयसीररक्षन्नधः श्येनो जवसा निरदीयमिति। गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच ॥५॥

स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके सर्वान्कामानाप्त्वामृतः समभवत्समभवत् ॥६॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– पुरुष में यह प्रथम गर्भ होता है। जिसे हम रेतस् कहते हैं। वह सम्पूर्ण अंगों से इकट्ठा हुआ तेज अपने में तेज धारण करता है और उसी का स्त्री में सिञ्चन करके गर्भाधान क्रिया से जन्म देता है यह जीवात्मा का प्रथम जन्म है। वह गर्भ अपनी माता रूप स्त्री के साथ उसी प्रकार आत्मभूत हो जाता है जैसे उसका अपना अंग। इसीलिए वह बालक अपनी माँ को नहीं मारता और वह नारी भी अपने गर्भ में आये हुए शिशु का बहुत सम्मान करती है॥ श्री॥

वह स्त्री गर्भ धारण करने के कारण सबके लिए सम्माननीय हो जाती है और जन्म के समय सम्मानपूर्वक कुमार को उत्पन्न करती है। मानो अपने को ही सम्मानित कर रही हो। चूँकि वह दशमास पर्यन्त बालक के जन्म के पहले तक उसे ससम्मान अपने गर्भ में धारण करती है इसीलिए जन्म लेने वाली सन्तान से सभी लोग सम्मानित होते हैं और यही इस पुरुष का दूसरा जन्म है। वही इसका आत्मा, पुण्य से पुनः परिवर्तित होता है। अर्थात् स्वयं वैवाहिक जीवन स्वीकार करके सन्तति परम्परा का विस्तार करता है और धर्मपूर्वक जीवन जीकर कृतकृत्य होकर

जब इस शरीर को छोड़ कर अन्यत्र जाता है। यही इसका तीसरा जन्म है। गर्भ में शयन करते हुए महर्षि वामदेव ने ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके इस प्रकार कहा— मैंने माँ के गर्भ में रहते हुए ही देवताओं के अनेक जन्मों को जान लिया। सैकड़ों सैकड़ों लौह के शृंखलाओं जैसी यातनाएँ मेरी नीचे से रक्षा कर रही थी। अर्थात् मुझे नहीं निकलने दे रही थी किन्तु मैंने ब्रह्मज्ञान के वेग से इन सब शृंखलाओं को तोड़ डाला। इस प्रकार इसी जन्म में ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके महर्षि वामदेव ने इस लोक से ब्रह्मलोक जाकर वहाँ सभी भगवदीय कामनाओं का उपभोग करके, मातृगर्भ की यातनाओं से मुक्त होकर, सर्वदा के लिए अमृत हो गये। अर्थात् परब्रह्म श्रीराम के नित्य परिकर हो गये॥ श्री॥

॥ इति ऐतरेयोपनिषद् के द्वितीय अध्याय पर श्रीराघवकृपाभाष्य सम्पन्न हुआ ॥

॥ **श्रीराघवः शन्तनोतु** ॥

•

॥ अथ तृतीयअध्याय ॥

॥ प्रथम खण्ड ॥

संगति– अब इस अध्याय में आत्मा की मीमांसा की जा रही है। यहाँ आत्मतत्व परमात्मापरक समझना चाहिए॥ श्री॥

कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे। तकत स आत्मा, येन वा पश्यति, येन वा शृणोति येन वा गन्धानाजिघ्रति येन वा वाचं व्याकरोति येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति॥१॥

यदेतद् हृदयं मनश्चैतत्। संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति सवाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति॥२॥

एव ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्च

महाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतींषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि च जारुजानि च स्वेदजानि चोद्भिजानि चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो यत्किंचेदं प्राणि जङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरं सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रम्। प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म ।।३।।

स एतेन प्रज्ञानेनात्मनास्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत्समभवत् ।।४।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– यहाँ ऋषिगण जिज्ञासा कर रहे हैं— जिसकी हम उपासना करते हैं। क्योंकि अपनी कोई उपासना नहीं कर सकता। अतः उपासक और उपास्य में भेद सिद्ध कर दिया। यहाँ आत्मा शब्द से प्रत्यगात्मा और परमात्मा दोनों ही बुद्धि में आरूढ़ होते हैं। जीवात्मा शरीर का निवासी है और परमात्मा उसका मित्र। अतः यहाँ तरप् प्रत्यय का प्रयोग करते हैं। अर्थात् इन दोनों में से हम किसकी उपासना करें। यहाँ यह ध्यान रहे कि— पश्यति आदि क्रियाओं में कर्त्ता जीवात्मा है और येन शब्द से सूचित होने वाला करणकारक का तात्पर्य परमात्मा है। अतः उत्तर देते हैं— जिसकी सहायता से यह जीवात्मा रूप को देखता है, जिसके सामर्थ्य से शब्दों को सुनता है, जिसकी शक्ति से गन्ध का अघ्राण करता है, जिससे प्रेरित होकर वाणी बोलता है, जिसकी चेतना से अपनी रस इन्द्रिय से स्वाद-अस्वाद का अनुभव करता है, वही जीवात्मा के मित्र परमात्मा उपासनीय हैं। भागवत (४/९/५) में श्री ध्रुव जी ने यही कहा— हे प्रभो! जो मेरे अन्तःकरण में प्रवेश करके सम्पूर्ण शक्तियाँ धारण करते हुए अपने दिव्य तेज से सोई हुई मेरी वाणी एवं हाथ, चरण, श्रवण, त्वक् तथा मेरे प्राणों को जीवनशक्ति प्रदान कर रहे हैं। ऐसे आप भगवान् को मेरा नमस्कार हो।। श्री ।।

अतः जीवात्मा के सम्पूर्ण अंगों को परमात्मा से शक्ति मिली है इसलिए वही उपास्य है।। श्री ।।

जो यह हृदय है, वही मन है और संज्ञान, अज्ञान, विज्ञान, प्रज्ञान,

मेधा, दृष्टि, धृति, मति, मनीषा, जूति, स्मृति, संकल्प, क्रतु, असु, काम और वश में ये सब प्रज्ञानरूप परमात्मा के ही नाम हैं॥ श्री॥

व्याख्या– यहाँ हृदयशब्द में 'हृदि अयं' ये दो शब्द जुड़े हैं। अर्थात् हृदय में यह परमात्मा हैं। इसी प्रकार इस मन की भिन्न अवस्थाओं के कारण संज्ञान से लेकर वश तक इसके नाम हैं। चूँकि जगत् भगवान् का शरीर है। इसलिए जगत् और जगदीश का अभेद है॥ श्री॥

यही परब्रह्म परमात्मा ब्रह्मा हैं, यही इन्द्र हैं, यही प्रजापति हैं, यही सम्पूर्ण देव हैं, यही पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पंच महाभूत भी परब्रह्म परमात्मा हैं, यही नक्षत्र हैं, यही भगवान् हैं, क्षुद्र और मिश्र जीव हैं, यही नक्षत्र हैं, यही अण्डज, पिण्डज, जारायुज, उद्‌भिज, सब कुछ हैं, यही घोड़े, गौ, पुरुष, हाथी हैं। जो कुछ चिदचिदात्मक स्थावरजंगममात्र हैं, वह सब प्रज्ञा नेत्र अर्थात् भगवान् की चेतना से ही चेष्टित हैं। यहाँ जीव और जगत् में शरीरशरीरिभाव मान कर अभेद दृष्टि से प्रथमा विभक्ति की गयी हैं। यह सारा संसार प्रज्ञानरूप ब्रह्म में प्रतिष्ठित हैं। यह लोक उस परमात्मा की चेतना से अनुप्राणित है। प्रज्ञा अर्थात् परमात्मा की चेतना ही सबकी प्रतिष्ठा है। प्रज्ञान ही ब्रह्म है। प्रकृष्ट है ज्ञान जिसमें उसे प्रज्ञान कहते हैं। जीव का ज्ञान अज्ञान से बाधित हो जाता है जैसा— 'अज्ञानेनावृतं ज्ञानम्' गीता (अध्याय ५/१५) में भगवान् कहते हैं कि— जीव का ज्ञान अज्ञान से अवृत है। इस प्रकार पर ब्रह्म का ज्ञान कभी अज्ञान से आवृत्त नहीं होता। वे सहज प्रकाश रूप हैं। अत: वही प्रज्ञानब्रह्म है। इस प्रज्ञानब्रह्म के द्वारा अर्थात् इसकी कृपा से यह जीवात्मा मृत्युलोक उत्क्रमण करके स्वर्गलोक में भी प्रसंशा प्राप्त करने वाले साकेतलोक में भगवत् प्रसादरूप सभी कामनाओं को प्राप्त करके जन्म-मरण के भय से मुक्त हो करके भगवान् का नित्य परिकर बन जाता है। 'समभवत्' शब्द में व्यत्यय से वर्तमान के अर्थ में लङ् लकार हुआ है। द्विरुक्ति आदरार्थ और ग्रन्थ समाप्ति की सूचना के लिए है। इस प्रकार ऐतरेयोपनिषद् का यह स्पष्ट सिद्धान्त है कि जीवात्मा परमात्मा का नित्यकिंकर है। वह अपने प्रमाद वश शरीर आदि सांसारिक

अनात्म पदार्थों में आत्मबुद्धि करके जन्म-मरण के चक्कर में पड़ता रहता है। ईश्वर की कृपा से जब उसे सद्गुरु की प्राप्ति होती है और उनसे शास्त्रीय विशिष्टाद्वैतसिद्धान्त का श्रवण करके वह अपने शुद्ध आत्मभाव में आकर स्वयं को भगवान् का दास और परमात्मा श्रीसीताराम को अपना स्वामी मान लेता है, तब भव-बन्धनों से मुक्त होकर प्रभु की नित्य सेवा का सौभाग्य प्राप्त कर लेता है॥ श्री॥

हे नवनील तमाल जलद सत्काम मनोहर,
हे करुणा आगार कृपामय चण्डधनुर्धर।
हे जानकी रमण रघुनन्दन विश्व विमोहन,
हे अनाथ के नाथ, नाथ रघुनाथ सुजन धन॥
हे राघव दशरथ सुवन कलिकराल कृतकार्य को,
ऐतरेय उपनिषद पर राघव कृपा सुभाष्य।
रामभद्र आचार्य किय भाषा बुधजन लास्य॥

॥ इति श्रीएतरेयोपनिषद् पर श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामी रामभद्राचार्य रचित श्रीराघवकृपाभाष्य सम्पूर्ण हुआ॥

॥ श्रीराघवोः शन्तनोतु॥

●

।। श्रीः ।।

ध्रुवमिदं, विश्वस्य विश्वेऽपि विचरकाश्चामनन्ति यज्जीवेनात्यन्तिकं सुखं नोपलब्धुं शक्यते केवलैः सांसारिकैर्भोगैः। तत्कृते तु तैः जगन्नियन्तुः परमात्मनः शरणमेवाङ्गीकरणीयम्। अनादिकालादेव सर्गेऽस्मिन् ब्रह्मजिज्ञासासमाधानपराः विचाराः प्रचलन्ति। विषयेऽस्मिन् सर्वे दार्शनिकाः सहमता यद्वेदैरेवास्य गूढरहस्यात्मकस्य परब्रह्मणः प्रतिपादनं सम्भवम्।

परब्रह्मणो निश्वासभूता अनन्तज्ञानराशिस्वरूपाः वेदाः ज्ञानकर्मोपासनाख्येषुत्रिषु काण्डेषु विस्कृताः सन्ति। एषां ज्ञानकाण्डाख्य उपनिषद्भागे वेदान्तापरनामधेया ब्रह्मविद्या वैशद्येन विर्वेचिता व्याख्याता चास्ति। आसामुपनिषदां सम्यग्ज्ञानेनैव ब्रह्मज्ञानं तेन च भवदुःखनिवृत्तिरित्युपनिषदां सर्वातिशायिमहत्वं राद्धान्तयन्ति मनीषिणः। आसु प्रश्नोत्तरात्मकातिरमणीयसुमम्यसरलशैल्या जेवात्मपरमात्मनोर्जगतश्च विस्तृतं व्याख्यानं कृतमस्ति। अनेकैर्महर्षिभिरनेकैः प्रकारैरुद्भावितानां ब्रह्मविषयकप्रश्नानां समाधानानि ब्रह्मवेतृणां याज्ञवल्क्यादिमहर्षीणां मुखेभ्य उपस्थापयन्त्युपनिषदः। भगवता वेदव्यासेन ब्रह्मसूत्रेषु भगवता श्रीकृष्णेन च श्रीगीतायामासामेव सारतत्वं प्रतिपादितम्।

भारतीयदर्शनानामाधारभूता इमे त्रयो ग्रन्थाः विभिन्नसम्प्रदायप्रवर्तकैराचरयैर्व्यख्याताः। एष्वद्वैतवादिन आद्यशङ्कराचार्याः प्रमुखा, अन्ये च द्वैतशुद्धाद्वैतद्वैताद्वैतशिवाद्वैतदिवादिनो विद्वांसः स्वस्वमतानुसारमुपनिषदः व्याख्यापयांबभूवुः।

अथ साम्प्रतिकभारतीयदार्शनिकमूर्धन्यैर्वेदवेदाङ्गपारङ्गतैर्धर्मध्वजधारिधौरेयैः श्रीरामानन्दाचार्यैः श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्यमहाराजैर्विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तमनुसृत्य कृतामिदमुपनिषदां **''श्रीराघवकृपाभाष्यम्''** सर्वत्रैवाभिनवविचारैर्व्युत्पत्तिभिश्चालङ्कृतं विभाति। भाष्येऽस्मिन्नाचार्यचरणैः शब्दव्युत्पत्तिचातुरीचमत्कारेण सर्वोपनिषदां प्रतिपाद्यः भगवान् श्रीराम एवेति सिद्धान्तितम्। मध्ये मध्ये गोस्वामिश्रीतुलसीदासग्रन्थेभ्यः ससंस्कृतरूपान्तरमुदाहृता अंशविशेषासुवर्णे सुरभिमातन्वन्ति। श्रीराघवपदपद्ममधुकराः भक्ता अत्रामन्दानन्दमाप्नुयुरिति भगवन्तं श्रीराघवं निवेदयति।

डॉ. शिवरामशर्मा
वाराणसी